# जैन दर्शन में कर्मसिद्धान्त

—पन्यासप्रवर श्री नित्यानन्दविजय जी

[जैन तत्त्व विद्या को अधिकारी विद्वान
प्रसिद्ध प्रवचनकार धर्म प्रभावक सन्त]

भारतीय दर्शनों में कर्म-दर्शन का महत्वपूर्ण स्थान है। यद्यपि पृथ्वी के सभी भागों में, सभी दर्शनकारों ने कर्मवाद माना है, परन्तु भारतीय दर्शनों में परस्पर मतभेद होते हुए भी कर्मवाद के अमोघत्व को सभी ने स्वीकार किया है।

विश्व के कवि-मनीषी कर्म-फल के विषय में एकमत हैं। अंग्रेजी के महान् साहित्यकार शेक्सपीयर ने कर्म-फल के विषय में कहा है : 'My deeds upon my head.' कवि शिहलन मिश्र 'शान्ति शतकम्' में बताते हैं :

आकाशमुत्पततु गच्छतु वा दिगन्त—
मम्भोनिधिं विशतु तिष्ठतु वा यथेष्टम्।
जन्मान्तरार्जितशुभाशुभकृन्नराणां
छायेव न त्यजति कर्मफलानुबन्धि ॥८२॥

आप आकाश में चले जाएँ, दिशाओं के उस पार पहुँच जाएँ, समुद्र के तल में घुस बैठें या चाहे जहाँ चले जाएँ, परन्तु जन्मान्तर में जो शुभाशुभ कर्म किये हैं, उनके फल तो छाया के समान साथ ही साथ रहेंगे, वे तुम्हें कदापि नहीं छोड़ेंगे। जैनाचार्य श्रीमद् अमितगति कहते हैं—

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा,
फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेण दत्तं यदि लभ्यते स्फुटं
स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा ॥ —सामायिक, पाठ ३०



Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(अपने पूर्वकृत् कर्मों का शुभाशुभ फल भोगना ही पड़ता है। यदि अन्यकृत कर्मों का फल हमें भोगना पड़ता हो तब हमारे स्वकृत कर्म निरर्थक ही रहें।)

जैनमतानुसार प्राणिमात्र को कर्म का फल भोगना ही पड़ता है। फलोत्पत्ति के लिए कर्मफल-नियन्ता ईश्वर का बीच में कोई स्थान नहीं है।

भौतिक संस्कृति में पले हुए लोग कर्मफल में विश्वास नहीं करते। उनकी शंका है कि "पापी मनुष्य सुखी और सज्जन दुःखी क्यों दिखाई देते हैं ?"

जैनदर्शन के अनुसार कर्म का फल तो अवश्य ही मिलता है उसके मिलने में कभी अधिक बिलम्ब भी हो सकता है, परन्तु कर्म का फल न मिले यह तो असम्भव है।

जैनमतानुसार हिंसक मनुष्य की समृद्धि और सज्जन पुरुष की दरिद्रता का कारण क्रमशः पूर्व-जन्मकृत पापानुबन्धी पुण्यकर्म और पुण्यानुबन्धी पापकर्म है। हिंसा और सज्जनता का क्रमशः अशुभ और शुभ फल अवश्य मिलता है, चाहे जन्मान्तर में ही क्यों न मिले।

अनन्त लब्धिनिधान गणधर गौतम स्वामी भगवान महावीर स्वामी से पूछते हैं :
"दुक्खे केण कडे ?"
(दुःख किसने पैदा किया)
भगवान ने बताया :
"जीवेण कडे पमाएण"
(स्वयं जीव ने ही दुःख उत्पन्न किये हैं)।
गौतम स्वामी ने फिर प्रश्न किया :
'दुःख पैदा कर आत्मा ने अपना अनिष्ट क्यों किया ?'
प्रभु ने उत्तर दिया :
'प्रमादवश।'

प्रमादवश जीव शरीर को आत्मा मानकर भोगों की ओर प्रवृत्त होता है। शारीरिक सुख के लिए वह हिंसा, शोषण आदि दुष्कर्मों में लिप्त होता है। यह उसकी घोर अज्ञान दशा प्रकट होती है। प्रमाद के कारण जीव राग-द्वेष, क्रोध, मान, माया और लोभ रूपी कालुष्य से कलुषित हो जाता है, अतः जीव को अपनी आत्म-शक्ति का बोध होना आवश्यक है।

सम्यक्त्व, स्वाध्याय, सत्संगति, शुद्ध चरित्र आदि से जीव की विभाव दशा मिट जाती है और वह बहिर्मुखता से अन्तर्मुखता की ओर मुड़ जाता है।

अन्तर्मुखी आत्मा अपने अन्तर्गत विद्यमान अनन्त चतुष्टय—अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्त-सुख और अनन्तवीर्य को अपनी निर्मल साधना से प्रकट करके परमानन्द में निवास करती है।

जैनदर्शन का कर्मवाद भाग्यवाद को स्वीकार नहीं करता। उसके अनुसार जीव स्वयं अपने भाग्य का निर्माता है। इस निर्माण में जीव का पुरुषार्थ महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यदि जीव मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थभाव चतुष्टय से विभूषित होकर सत्कर्म में पुरुषार्थ करे तो उसके अन्तर् के कपाट खुल जायेंगे और वह मानस-मन्दिर में विराजमान करुणासागर वीतराग परमात्मा के दर्शन कर सकेगा। ○

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org